* ओं नमः सिद्धेभ्यः *

मौनव्रत कथा।

समस्त दोष रहित, और लोक अलोकके जाननेवाले ऐसे वृषभादि वर्द्धमान पर्यन्त तीर्थं-कर परमदेव, तथा सिद्ध भगवानको भक्तिसे नमस्कार कर भव्य जीवोंके हितके लिये स्वामी श्रीगुणभद्राचार्य यह मौनव्रत कथा कहते हैं॥१॥ सन्मार्गको प्रकाश करनेवाली श्रीजिनवाणी तथा सन्मार्गके धारक श्रेष्ठ गुरुओं (आचार्य-उपाध्याय सर्वसाधु) को नमस्कार करता हूं, जिनके प्रसादसे बुद्धि अत्यन्त निर्मल और

विशद हो ॥२॥ जिन मौनव्रतके पालन करनेसे समस्त प्रकारकी कलह नाश हो जाती है, तथा केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥३॥ मौनव्रत धारण करनेसे असत्य भाषण, (झूठ) कटुक भाषण, दूसरोंकी निन्दा, और व्यर्थ भाषण (बक बक) की आदत (स्वभाव) छूट जाती है, और वाणी हित-मित और सत्य प्रकाशन करनेवाली हो जाती है। क्रोध, मात्सर्य और अहंमन्यताका भाव जाता रहता है। प्रकृति सरल और पवित्र हो जाती है ॥४॥ इसलिये मनुष्य मौनव्रतके पालन करनेसे सर्वप्रकारसे सुखी और निराकुल हो जाता है। इतना ही नहीं किन्तु मौनव्रतसे इन्द्रियोंकी लोलुप गति रुक जाती है। जिससे परम संयमकी वृद्धि होती है और क्रमसे मोक्षकी भी प्राप्ति होती है ॥५॥ मौनव्रतके पालन करनेसे प्रत्यक्षमें भी अनेक लाभ होते हैं। 'वैर विरोधका नाश' यह मौनव्रतका प्रत्यक्ष महा फल है। इस प्रकार यह मौनव्रत अनेक उत्तमोत्तम फलोंका

प्रदान करनेवाला है। इसलिये हे भव्यजीवो! आप भी मौनव्रतके पालन करनेमें प्रयत्न शील हो ॥६॥ मौनव्रतको पालनकर किसने उत्तम फल प्राप्त किया? और किस प्रकार मौनव्रत धारण किया? तत्सम्बन्धी मनोहर कथाको मैं (श्रीगुणभद्राचार्य) जिनागमके अनुसार कुछ कहता हूं ॥७॥

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अत्यन्त मनोहर कौशल (अयोध्या) नामक देश है। वहांपर धन-धान्यसे परिपूर्ण अत्यन्त समृद्धिशाली कौशाम्बी नामकी नगरी है। जिस नगरीमें अनेक धर्म्मा-त्मा जन निवास करते हैं। इस नगरीका परम दयालु नीतिवान और जिन धर्मका पालन करने-वाला हरिवाहन नामका शासक-राजा था। वह अपनी प्रजाको पुत्रके समान पालन करता था ॥८-९-१०॥ महाराज हरिवाहनके शशिप्रभा नामकी रानी थी, जो अपने रूप, गुण और शीलसे समस्त जगत्को मोहित करती थी। रानी और

राजामें परस्पर अपूर्व प्रेम था जिससे वे सांसारिक सुखके साथ साथ सदाचार और धार्मिक आचरणोंको पालन करते हुए निराकुलित काल व्यतीत करने लगे।

दंपति-राजा-रानीके प्रेमका फलरूप अत्यन्त मनोहर और शुभ लक्षणोंसे सुशोभित सुकोशल नामका एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। जो माता पिताको बड़ा ही प्यारा था। वह बालक दूजके चन्द्रमाके समान गुण, वय और रूपमें बढ़ने लगा॥१२॥ बालकका पालन पोषण राज ऋद्धिके अनुसार अतिशय सुखकर हुआ। जब यह बालक सात वर्षका हुआ तब शुभ मुहूर्त्तमें महान् उत्सवके साथ एक जैन उपाध्यायके पास (शिक्षाक्षर 'ओं नमः सिद्धेभ्यः'से प्रारम्भ कर समस्त विद्यायें) विद्याभ्यास करानेके लिये बिठाया। अल्प समयमें ही वह बालक पूर्व पुण्योदयसे समस्त विद्यायें तथा अनेक कलायें सीख गया, और जिनागमका पूर्ण पार-

गामी हो गया ॥१३-१४-१५॥ जैसे जैसे वह विद्या और कलाओंमें निपुण होता गया वैसे वैसे वह विनय सरलता और दयादि गुणोंसे अद्वितीय होने लगा। उसकी नीति और चातुर्यतासे समस्त प्रजा मोहित हो गई थी। क्रमसे वह सोलह वर्षका युवक हुआ तब पिताने योग्य कुलकी अनेक मनोहर कन्याओंके साथ आर्ष विधिसे विवाह किया ॥१६॥

यद्यपि माता पिताने योग्यवयमें राजकुंवरका अनेक रूपवान कन्याओंके साथ विवाह किया था, तो भी राजकुंवरका मन विषयोंकी तरफ जरा भी नहीं था। किन्तु उसका नित्यका कर्तव्य विद्या-विनोद था। राजकुंवरका मन ज्ञानसे इतना निर्मल और विकार रहित था कि विषय क्या है? और उनका सेवन कैसे होता है यह वह जानता ही नहीं था। राजकुंवरकी ऐसी अलौकिक दशा देखकर महाराज कुल वृद्धिकी चिन्तासे दुखित होने लगे ॥ १७—१८ ॥

एक समय नगरके बाह्य उद्यान (बाग) में अवधिज्ञानी महा तपस्वी सोमप्रभाचार्य मुनीश्वर पधारे। मुनिराजके प्रभावसे सूखे वृक्ष पल्लवित हो गये, सूखे तालाव पानीसे लबालब भर गये, और ऋतु बिना ही समस्त वन फलफूलसे शोभायमान हो गया। यह आश्चर्य देख वनका माली अत्यन्त आश्चर्यसे हर्षित होकर राजसभामें गया और मुनिराजके आनेकी वधाई उत्तम फल फूल भेंट दिये ॥१९-२०॥

बनमाली कहने लगा कि हे महाराज! यह देश और यह नगर धन्य है आज यहांकी प्रजाका महान् पुण्यका उदय है। हे स्वामिन्! परम शांत, परम निस्पृह, परम तेजस्वी, जितेन्द्रिय और परम तपस्वी श्री सोमप्रभाचार्य नामके महा मुनीश्वर आपके उद्यानमें आकर विराजे हैं। मुनीश्वरके प्रभावसे समस्त वन पल्लवित हो गया है और सर्व प्राणी अपना जातीय वैर छोड़कर शांत हुए दीखते हैं ॥२१-२२-२३-२४॥

वनमालीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। छत्र चमरादि राज चिन्हों-को छोड़कर पहने हुए अपने समस्त आभूषण वनमालीको प्रदान कर दिये। जिस दिशामें मुनिराज विराजमान थे उस दिशाकी तरफ सात पद चलकर राजाने मुनिराजको परोक्ष नमस्कार किया, और हर्षके साथ नगरमें मुनिराजकी वंदनाकी आनन्द भेरी-पटह-घोष दिलवाई ॥२५॥ राजा रानी सहित अपने हाथीपर चढ़कर मुनि-राजकी वंदना करनेके लिये चला। प्रजाजन भी उज्वल और पवित्र वस्त्र पहनकर अपने अपने कुटुम्ब और परिवारके साथ राजाके पीछे पीछे चलने लगे। भक्तिसे अत्यन्त प्रफुल्लित और अष्ट द्रव्यको लिये हुए श्रावक जन इंद्रके सामान शोभा देते थे। राजाने दूरसे ही परमनिस्पृह, परम शांत और परम सदाचारी मुनिराजको देखकर अपना राजचिन्ह छोड़ दिया और हाथीसे उतर कर विनयसे अत्यन्त नम्रीभूत होकर जय, जय,

जब ऐसा उच्चारण करता हुआ मुनिराजके समीप जाकर तीन प्रदक्षिणा दीं। भक्तिसे गद्गद होकर अनेक स्तोत्रों द्वारा मुनिराजके गुणोंका स्मरण कर बारंबार नमस्कार किया, और पूजा की। धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे नम्र होकर मुनिराजके पास बैठा। मुनिराजने धर्मवृद्धि रूप शुभाशीर्वाद दिया और धर्मका स्वरूप कहा, जिसको सुनकर अनेक भव्य जीवोंने सन्मार्ग ग्रहण किया ॥२६-२७-२८-२९॥

अवसर मिलनेपर राजाने पूछा कि हे प्रभो! यह पुत्र राजनीतिमें निपुण है या नहीं? और यह सदैव विषयोंके विकारसे रहित मात्र शास्त्राध्ययनमें समय व्यतीत करता है, इसलिये इससे कुल वृद्धि और राजशासन बढ़ेगा या नहीं? इतना कहकर राजा मुनिराजके चरण कमलोंकी तरफ नम्रतासे देखने लगा। राजाके आशयको जानकर मुनिराज कहने लगे कि हे राजन्! एकाग्र मनसे सुनो। मैं इस

राजकुंवरका पूर्व भव संबन्ध कहता हूं। जंबू-द्वीपके भरतक्षेत्रमें नरकूट नामका एक नगर है। वहांपर अति प्रताप और परम शूरवीर गणक नामका राजा था। उसके यहां शीलवती अत्यन्त सुन्दर और समस्त गुणोंसे भूषित त्रिलोचना नामकी प्रसिद्ध रानी थी। राजा रानीमें परस्पर अतिशय प्रेम था। दोनोंका मन एक था। दोनों ही पुण्यात्मा सदाचारी और परम धार्मिक थे ॥३४॥ इसी नगरमें भाग्यशाली तुङ्गल नामका एक वैश्य रहता था। इसके तुङ्गला नामकी स्त्री थी। तुङ्गलाका रूप दिव्य था, गुण और शीलमें भी तुङ्गला सर्व श्रेष्ठा थी। हे राजन्! यह आपका पुत्र सुको-शलका जीव पूर्व भवमें इस तुङ्गलाके गर्भसे तुङ्गभद्रा नामकी पुत्री हुआ ॥ ३६ ॥ तुङ्गभद्राके पापकर्मके उदयसे समस्त वंधुवर्ग क्षय हो गया। अल्पवयमें ही माता पिताका वियोग हो गया। यद्यपि तुङ्गल सेठ बहु कुटुम्बी था तो भी पापो-

दयसे समस्त कुटुम्बका नाश हो गया। तुङ्गभद्रा कुटुंब रहित, लोगोंकी झूंठन (उच्छिष्ठ) खाकर जैसे तैसे बढ़ने लगी। इस प्रकार भयंकर दुखोंको सहन कर वह आठ वर्षकी हुई। अब यह ईंधनका बोझ जङ्गलसे लाकर बेचने लगी और कष्टसे अपना उदर पूरण करने लगी। इस प्रकार तुङ्गभद्राका समय पापके कारण अतिशय दुःखप्रद था। दरिद्रताके कारण खाने पीनेका कुछ भी साधन नहीं था, और न बैठने उठनेके लिये घर था। अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें यह बिचारी अपना जीवन पूर्ण करती थी। एक दिवस वह वनमें ईंधन लेनेके लिये गई। तो इसने वहांपर अनेक शिष्योंके मध्यमें विराजमान महान् तपस्वी अवधिज्ञानी पिहिताश्रव नामके मुनिराजको देखा।

मुनिराजके आगमनसे समस्त नरनारी अपने अपने कुटुम्बके साथ पवित्र वस्त्रोंको पहन कर वंदना करनेको आये। मुनिराजके आग-

मनसे इतना कोलाहल हो गया था कि कानों-
से एक शब्द भी सुनाई नहीं देता था। अनेक
प्रकारके वाजोंसे दिशायें शब्दायमान हो रही
थीं। समुद्रके वेगके समान समस्त जनता हर्ष-
से विह्वल होकर जय, जय, जय शब्द करती
हुई मुनिराजके समीप जा रही थी। थोड़े से
समयमें ही वह वन धर्मोपदेश सुननेके इच्छुक
भव्य जीवोंसे परिपूर्ण हो गया। राजा आदि
प्रधान पुरुषोंने क्षमाकी साक्षात्मूर्ति मुनिराज-
की तीन प्रदक्षिणा दीं और भक्तिसे वार वार
नमस्कार किया।

मुनिराजने धर्मवृद्धिरूप शुभाशीर्वाद दिया।
फिर धर्मका स्वरूप कहा। धर्म के दो भेद हैं।
एक गृहस्थ धर्म और दूसरा मुनि धर्म। मुनि-
धर्म साक्षात् मोक्षका कारण होनेसे विशेष
उपयोगी है। गृहस्थ धर्म परंपरासे मोक्षका
कारण है। गृहस्थ धर्मका संक्षेपसे यह स्वरूप
है, कि गृहस्थोंको धर्म धारण करनेके प्रथम ही

अपनी आत्मामें धर्म धारण करनेकी पात्रता बनानी चाहिये। पात्रता बिना धर्मके अंकुर पल्लवित नहीं होते हैं। और न आत्म लाभ होता है। आत्मामें धर्मकी पात्रता सम्यग्दर्शनकी विशुद्धतासे होती है, सच्चे देव शास्त्र* और

---

* वर्तमान समयमें देव, गुरु और धर्मका स्वरूप प्रकट करनेवाला शास्त्र है। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति यद्यपि अनेक कारणोंसे होती है तो भी उन सब कारणोंमेंसे प्रधान कारण शास्त्रकी मान्यता है। यद्यपि परीक्षा प्रधानी प्रत्येक वस्तुका निर्णय युक्ति और आगमसे निर्णीत करता है तो भी अपनी युक्ति आगमके अनुकूल ही रखता है। आगम विरुद्ध युक्ति वा तर्क प्रमाण भून नहीं मानी गई हैं। आगमके अनुकूल तर्क और युक्तियोंसे आगमकी आज्ञाको प्रमाण मानना ही आगमकी श्रद्धा है। अन्यथा आगम प्रमाणमें अनेक बाधायें उपस्थित होती हैं। इससे आगमका ही नाश नहीं होता है किंतु सम्यग्दर्शनमें भी मलिनताके साथ २ कभी २ मिथ्यात्व परिणति प्रकट हो जाती है। आगमके कुछ अंशमें प्रमाणता और अवशेष अंशोंमें अप्रमाणता मदोन्मत्त पुरुषकी लीला है। इससे आत्म श्रद्धानमें हानिके सिवाय शासनका लोप होता है। आगम प्रमाणमें शंका, अथवा समयके अनुसार धर्म और आगमका परिवर्त्तन होता है ऐसी विपरीत धारणासे आगमके व्याख्यार्थमें अपनी अपनी

गुरुओंका पूर्ण श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, इस सम्यग्दर्शनसे ही आत्म लाभ होता है, आत्माका हित सम्यग्दर्शनके सिवाय अन्य किसीसे नहीं होता है, धर्मका मुख्य बीज यही सम्यग्दर्शन है। सन्मार्गकी प्राप्ति इस सम्यग्द-

---

इच्छाके अनुकूल अर्थ करना और ऐसी युक्ति या तर्कणासे विपरीत धारण करना भी मिथ्यात्व है। समयानुसार आगम और धर्म अपना स्वरूप बदला करते हैं ऐसी मिथ्या बुद्धिसे आगममें सशंक होना भी मिथ्यात्व है।

श्रद्धाका मुख्य वाच्यार्थ निःसंशयता है। एक शास्त्रमें कुछ अंशोंकी प्रमाणता और कुछ अंशोंकी अप्रमाणता आगम प्रणेता अरहंतकी सर्वज्ञतामें संदेह कराती है, जिस अंशमें अपनी रुचि नहीं है वह अंश ही अप्रमाण है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। युक्ति और आगमके विरुद्ध अपनी रुचिको ही प्रधान मानना यह श्रद्धा नहीं है। किन्तु आगमको स्वमंतव्यानुसार बनाकर अपनी सर्वज्ञता प्रकाश करना है। यह मिथ्यात्व ही नहीं किन्तु अवर्णवाद है क्योंकि—

पद अक्खरंच एकपि जोण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वहु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १ ॥

आगमका बहुतसा भाग रुचिकर होनेसे प्रमाण भूत मानना

शनसे ही होती है, सुख और शांतिका यही उपाय है। इसलिये भव्य जीवोंको सम्यग्दर्शन प्रयत्न पूर्वक धारण करना चाहिये। सम्यग्दर्शन धारण

परन्तु कुछ भागमें अपनी रुचि नहीं होनेसे अप्रमाण मानना अथवा आगमके एक अक्षर मात्रमें सशंकित होना मिथ्यात्व ही है। क्योंकि प्रमाणताका अर्थ यह नहीं है कि जो कुछ देशकालके अनुसार अपनी रुचिमें आया वह प्रमाण और जो देशकालके अनुसार रुचिकर नहीं हुआ वह अप्रमाण, यह तो आगमके प्रमाणमें धोखाबाजी है। मिथ्यात्व है। इसी प्रकार देव धर्म और गुरुमें भी दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये। व्यवहार कार्यमात्र धर्मके साधन है। इसलिये व्यवहार कार्य (जिनसे सम्यक्त्वमें हानि न होती हो और न व्रतादिकोंमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो) सभी धर्मके अंग हैं। व्यवहार कार्य धर्म बुद्धिसे करना धर्मकी वृद्धि करना है किन्तु वे ही व्यवहार कार्य मिथ्यात्व बुद्धिसे करना मिथ्यात्व है, वर्ण व्यवस्था-विवाह-समदत्ति और व्यवहार वर्तन आदि सब धर्मके अंग हैं। इसलिये इनमें भी धर्म बुद्धिसे दृढ़ता रखना सम्यक्त्वके उत्पादक है। धर्म विरुद्ध महान कार्य भी मिथ्यात्व है, चाहे उस महान कार्यसे संसार मात्रका भला क्यों न होता हो तो भी मिथ्यात्वके समान दुःख प्रदाता और कोई नहीं है। विधवा विवाह वर्ण व्यवस्थाका नाश यह भी धर्म विरुद्ध है। इसको शास्त्रोक्त मानना मिथ्यात्व है।

करनेके लिये आत्म परिणामोंमें ऐसी विलक्षण दृढ़ता होनी चाहिये कि कितनी ही भयंकर विपत्ति, कैसा ही भय, विश्वको मोहित करनेवाला कैसा ही लोभ और तीन जगतको ललचानेवाली कैसी ही मधुर आशा भले ही कोई प्रदर्शित करे तो भी अपने परिणामोंमें देव, शास्त्र और गुरुकी श्रद्धामें यत् किंचित् मात्र भी शंका न होनी चाहिये। मोक्षकी प्राप्ति इन सिवाय अन्यसे कल्पान्त कालमें भी नहीं होगी ऐसी दिव्य दृढ़तासे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन* होनेपर वह जीव धर्मका पात्र समझता है। ऐसे जीवोंका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है, जिन जीवोंके व्यवहार सम्यग्दर्शन

* आठ मूल गुण पालन करे बिना श्रावकोंके रक्त-ज्ञानतंतु और हृदयकी शुद्धि नहीं होती है, क्योंकि मद्यादिकोंके सेवनसे रक्तमें क्रूरता, ज्ञान तंतुओंमें विकारता, और मनमें जाड्यता सदैव बनी रहती है। मद्य त्याग १ मांसत्याग २ मधुत्याग ३ वड़फल त्याग ४ पीपल फल त्याग ५ उदंबर फल त्याग ६ पाकर फल-त्याग ७ कठूमरफल त्याग ८ ये भी मूलगुण हैं।

नहीं है वे धर्मके पात्र नहीं है, और न उनका चारित्र मोक्षका साधक होता है। इसलिये सबसे प्रथम व्यवहार सम्यग्दर्शनसे अपनी श्रद्धा दृढ़ करनी चाहिये। जब तक ऐसी दृढ़ श्रद्धा नहीं है, तब तक चारित्र हाथीके स्नानके समान संसारवर्द्धक है और ज्ञान मिथ्यात्ववर्द्धक है। सम्यग्दर्शनके होने पर ही चारित्र लाभकारी है। गृहस्थोंका सदाचार (चारित्रधर्म) अष्ट मूल गुणोंका पालन करना है। गृहस्थोंके मूल गुण आठ हैं। जिनदर्शन १ जल गालन २ रात्रि भोजन त्याग ३ मद्यत्याग ४ मधुत्याग ५ मांस त्याग ६ पंचोदंबर त्याग ७ और जीव दया ८ इस प्रकार श्रावकोंके मूल गुण हैं। इनके पालन किये विना धर्म देशनाका पात्र नहीं है। उत्तर चारित्रके ये मूलभूत हैं इनका पालन किये उत्तर चारित्र नहीं होता है। सप्त व्यसनोंका त्याग भी गृहस्थोंको सातिचार वा निरतीचार करना चाहिये। सप्त व्यसन

ये हैं—जुआका त्याग १ मांसका त्याग २ मद्य (मदिरा) का त्याग ३ वेश्याका त्याग ४ शिकारका त्याग ५ चोरीका त्याग ६ और पर स्त्रीका त्याग ७ ये सातों ही व्यसन महान् दुःखोंके देनेवाले हैं। इस प्रकार गृहस्थोंका यह साधारण धर्म है तथा हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील और अधिक लालसा (परिग्रहकी तृष्णा) ये पंच पाप कहलाते हैं इनका सेवन इस लोक और परलोक दोनोंमें ही दुःख देनेवाला है। इसलिये इनका स्थूलतासे त्याग करना श्रावकोंका प्रथम धर्म है। इसी प्रकार तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रतोंका पालन करना श्रावकोंका धर्म है। इस प्रकार १२ भेद गृहस्थोंके धर्मके होते हैं। धर्मका ऐसा अद्भुत रहस्य सुनकर समस्त जनता तथा राजाआदि प्रधान पुरुष अतिशय प्रसन्न हुये और भक्ति भावसे धर्ममें सावधान होकर अनेक प्रकारके व्रत तथा सदाचारसे दीक्षित हुये।

इसी अवसर पर वह विचारी तुंगभद्रा अपने

शिरसे ईंधनके बोझ (भार) को उतार कर (जिधर समस्त जन मंडल मुनि राजकी भक्ति पूजामें लवलीन हो रहा था) अश्चर्यसे उस दिशाकी तरफ चली, इसके मनमें वार २ यही ध्यान हो उठता था कि ये सज्जन जन इतने क्यों एकत्रित हुये हैं। वह इसी विचारमें जिधर मुनिराज विराजमान थे उधर गई, थोड़ी सी दूर जानेपर उसने दिव्य कांतिके धारक महा प्रभावशाली मुनिराजको देखा।

मुनिराजके पास जाकर इसने बड़ी भक्तिसे विनयके साथ नमस्कार किया। मुनिराजने धर्म वृद्धि रूप शुभाशीर्वाद दिया। वह शांत होनेपर भगवानसे पूछने लगी कि हे प्रभो! मैं बड़ी अभागिनी हूं। मेरे दुःखकी सीमा नहीं है, मैंने पूर्व भवमें न जाने कितने घोर तम पाप किये हैं, हे स्वामिन्! न मेरे कोई बंधु हैं, न माता पिता ही हैं, हे भगवान्! मैं अकेली दरिद्रता और दुःखसे पीड़ित हूं। हे स्वामी! मैं इतना ही

आपसे पूछती हूं कि मैंने पर भवमें ऐसा कौन-सा भारी पाप किया है जिससे मेरी यह दशा प्राप्त हुई है। तुंगभद्राका अभिप्राय जानकर दयालु मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्री! यह जीव मिथ्यात्वसे भव भवमें कितने भयंकर दुःख सहन करता है, और जन्म मरणकी भयंकर वेदनाको भोगता है। यह कहनेके लिये कौन समर्थ है? तुंगभद्रा यह सुनकर पापसे भयभीत हुई, और पापोंकी शांतिके लिये इस प्रकार प्रार्थना की।

हे प्रभो! मुझे कोई ऐसा व्रत दीजिये जिससे यह मेरा पाप शीघ्र ही नाश होजाय। मुनिराजने कहा कि हे पुत्री! तू मौनव्रत धारण कर, इससे शीघ्र ही तेरे सब पाप नाश हो जायेंगे, तथा इस व्रतसे स्वर्गादिकोंके अपूर्व सुखोंकी प्राप्ति होगी। एवं क्रमसे मोक्षका सुख भी प्राप्त होगा। यह सुनकर तुंगभद्राने कहा कि हे स्वामिन्! इस व्रतकी क्या विधि है? कौन-

से महीनामें कब किया जाता है, इस व्रतसे कौनसे फलकी प्राप्ति होती है सो सर्व कहिये। मुनिराज तुंगभद्राको आसन्न भव्य समझकर व्रतकी समस्त विधि विस्तार पूर्वक कहने लगे। हे पुत्री ! तू मन लगाकर सुन।

मौनव्रतकी विधि।

पौष सुदी ११के दिवस १६ प्रहरका मौन सहित उपवास करना चाहिये। उस दिन श्री-जिनेन्द्र भगवानका पंचामृताभिषेक * करना

* यद्यपि पंचामृताभिषेकमें आरंभ अधिक है तो भी श्री-जिनेन्द्र भगवानका स्पर्श—एवं गुणानुस्मरण अधिक समय पर्यन्त अभिषेक से होता है। दूसरे जन्माभिषेककी महिमा अपार है, इसमें भावोंकी विशुद्धता अधिक होती है। तीसरे दूध-दही आदि पदार्थ इंद्रियोंको तृप्तकारक और बहुत ही प्रिय हैं, प्रिय पदार्थ स्वामीको समर्पण कर उससे मोह छुड़ानेका भाव होता है। दूध-दही मांगलीक पदार्थ हैं। उत्तम कार्योंमें मांगलीक पदार्थों-का उपयोग शुभ शकुनका करनेवाला होता है। इससे भावुक जनको श्रद्धा उत्पन्न होती है कि मुझे पहले ही शुभ शकुन हुआ है तो अवश्य मेरी धारणा सिद्ध होगी। जैसा उज्वल पदार्थ

चाहिये। अर्थात् प्रासुक दूध, दही, घृत, खांड और गंधोदकसे महाभिषेक करना चाहिये। एवं सर्वौषधी और पूर्णकलशोंसे भगवान्का स्नपन बड़ी भक्ति पूर्वक करना चाहिये। अभिषेक बिना पूजन पूर्ण पूजन नहीं होती है। अभिषेकके बाद आठ द्रव्यसे नाना स्तोत्रों द्वारा भगवानकी पूजा महान् उत्सवसे करनी चाहिये। रात्रिको दिव्य आरती कर गीत-स्वाध्याय और धर्मकथा-के द्वारा जागरण करना चाहिये। जो कुछ करो विशुद्ध भावोंसे और पवित्र हृदयसे करो। भावोंकी विशुद्धता ही फलमें विशेष सहायक होती है।

उपवासके दिवस भोजनादि विकथाओंका परित्याग करना चाहिये। व्रतकी विशुद्धिके

समक्ष आता है वैसा ही परिणाम उज्वल हो जाता है। दूध-दही प्रतिमाजीमें दिव्य कांति प्रसार करते हैं इसलिये पंचामृताभिषेक-से पुण्यबंध सर्वोत्कृष्ट होता है।

लिये प्रमादका भी त्याग करना चाहिये।

दोष रहित मौनव्रत फलप्रद होता है। इस लिये मौनव्रतको धारण करनेवाले भव्यजीवोंको मौनव्रतके दोषों (अतीचार) का परिहार करना चाहिये। मौनव्रतके दोष ये हैं—

मौन समय हाथसे इशारा करना, मुखकी विचित्र आकृतिसे समझाना, हुं हुं हुं इत्यादि शब्दोंकी चेष्टा करना, शीतकार आदि व्यंग ध्वनि करना, खांसना, खुंखारना, शरीरकी दूसरी चेष्टायें करना, आंगली वताकर समझाना ताली बजाकर वतलाना, अस्फुट अक्षरोंसे विवेचन करना, गुन गुनाट करना, स्थानांतरका भेद वतलाना, लिखकर समझाना, कंकर पत्थर फेंककर समझाना, आंख फेरकर समझाना, भ्रकुटीको वक्रकर वतलाना, हंसना, क्रोध करना, होट काटना और आंगोपांग हिलाकर समस्या करना इत्यादि ये सर्व मौनव्रतके दूषण हैं। अपना हितैषी पुत्र मित्र आगया हो तो हर्षसे प्रसन्न होकार दृष्टि

विक्षेप द्वारा वातचीत करना, यह भी मौनव्रती पुरुषोंके लिये दोष है। मौनव्रती पुरुषोंको दिवसमें शयन नहीं करना चाहिये। तथा ब्रह्मचर्य से दृढ़ता पूर्वक रहना चाहिये। सचित्र वस्तुओंका सेवन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष पर्यन्त यह व्रत करे। अर्थात् प्रत्येक मासकी सुदी ११को १६ प्रहरका उपवास (दशमीको एकासन एकादशीको उपवास और वारसको एकाशन) मौन सहित करना चाहिये और ऊपर कहे हुऐ दोषोंको छोड़कर विशुद्ध भावोंसे श्रीजिनदेवकी अभिषेक पूर्वक पूजा, स्वाध्याय-दान और धर्मकृत्य करना चाहिये। कदाचित् आयुष्य पर्यन्त मौनव्रत धारण करना हो तो नीचे लिखी विधिसे करे।

मौनव्रत किन किन कार्यमें करे ?

भोजने वमने स्नाने मैथुने मलमोचने
सामायिके जिनार्चादाविति स्यान्मौनसप्तकम् ॥

अर्थ—भोजन, उलटी, (वांति-वमन) स्नान

मैथुन और मल मूत्रके छोड़नेमें मौन धारण करना चाहिये। तथा सामायिक-जिन पूजना दिक कर्मोंमें मौन धारण करे। इस प्रकार सात कार्योंमें मौनसे एकाग्रचित होकर कार्य करे।

इस प्रकार नित्य और नैमित्तिक भेदसे मौनव्रतके दो भेद हैं, वह अपनी शक्तिके अनुसार पालन करना चाहिये।

मौनव्रतका उद्यापन करते समय भगवान-के मंदिरमें अतिशय ध्वजा पताकायें लगाना चाहिये। अनेक धूप घटोंसे मंदिरमें सुगंधी करनी चाहिये। मनोहर सुरम्य वाजोंकी मिष्ट-ध्वनिसे जगतमें जैन धर्मकी महिमा प्रकट करनी चाहिये। तोरण-चन्दोवा-झालर और मनोहर सिंहासन आदि विभूतिसे मंदिरमें महान् उत्सव करना चाहिये। रथोत्सव-पूजाभि-षेक, गीत, नृत्य आदि उत्सवोंसे जैनधर्मकी प्रभावना करनी चाहिये।

नैमित्तिक मौनव्रत १ वर्षमें ही पूर्ण हो जाता

है अर्थात् पौष सुदी ११ से प्रारंभ कर प्रत्येक मासकी वदी और सुदी की ११ को यह व्रत उपवास सहित करना चाहिये, इस प्रकार करने से १ वर्षमें २४ उपवास होंगे। इसके उद्यापन की विधि यह है।

त्रिलोक पूज्य चौवीस तीर्थंकर भगवानकी प्रतिमा नवीन निर्मापण करावे तथा नवीन भव्य मंदिर बनवावे। चार संघको निमंत्रण कर महान् उत्सवके साथ भगवानकी प्रतिष्ठा करावे। प्रतिष्ठाके समय आये हुये चार संघका भोजन-पान आदि सत्कार्यों से सुश्रूषा करे। पाठशाला-तीर्थ और धर्मायतनोंमें अपनो शक्तिके अनु-सार दान करे। चौवीस उपकरण श्रीमंदिर जीमें अपनी महान् भक्तिके साथके चढ़ावे। २४ कलश, २४ झारी, २४ शास्त्र, २४ वेष्टन, २४ छत्र, २४ ध्वजा, २४ दीपक, २४ फल, २४ नैवेद्य, और भगवानकी पूजाके पात्र (वर्त्तन) चौवीस चौवीस चढ़ावे। श्री जिन मंदिरजीमें

पूजा,प्रभावना,अभिषेक,गीत,नृत्य और अनेक प्रकारके उत्सवोंसे अपनी शक्तिके अनुसार उद्यापन करे।

कदाचित् अपनी शक्ति अल्प हो तो २४ श्रीफल, शास्त्र २४ दीपक और २४ कलश श्री-जिन मंदिरजीमें गाजे बाजेके साथ लाकर महान् उत्सवसे अभिषेक,पूजा और प्रभावना करे। इस प्रकार विधि सहित जो मनुष्य इस मौनव्रतको धारण करता है वह अवश्य ही अनेक सुखोंका स्वामी होता है। उसका दुःख दारिद्र सदाके लिये नाश हो जाता है, और सर्व प्रकारकी शांति उसको अवश्य ही मिलती है। मनोकामना पूर्ण होती है।

जो मनुष्य इस व्रतके साथ हिंसादिक पंच पापोंका त्याग कर सदाचार (चारित्र) धारण करता है और सदैव भगवानकी पूजा आदि धार्मिक कार्यों में शुभभावोंसे संलग्न रहता है वह अवश्य मोक्षका पात्र होता है। इसलिये

हे भव्यजीवो ! प्राणान्त होने पर भी इस व्रतका परित्याग मत करो।

इस व्रतकी दृढ़ताके लिये अपराजित महामंत्र (णमोकार मंत्र) सदैव स्मरण करना चाहिये। और अपने भावोंकी विशुद्धिके लिये धर्मध्यानमें तत्पर रहना चाहिये। पारणाके दिवस भव्य श्रावकोंको अनाहार दान देकर स्वयं पारणा करे यदि उत्तम पात्रका संयोग हो जाय तो पूर्ण भक्तिके साथ आहार दान दे।

व्रतपूर्ण होनेपर २४ अथवा १०८ लाडू सौभाग्यवती स्त्रियोंको देवे। तथा वस्त्र भूषण आदि देकर पूर्ण उद्यापन करे। इस प्रकार नैमित्तिक मौनव्रत यथा विधिसे करे। इस नैमित्तिक मौनव्रतमें नित्य ही भगवानकी अभिषेक पूर्वक पूजा करे, शास्त्र स्वाध्याय तथा दान करे। जो कदाचित् अपनी शक्ति ऐसी न हो तो द्विगुणित इस व्रतको करे।

नित्य मौनव्रतका निर्वाह अपनी शक्तिके

अनुसार प्रमाद रहित करना चाहिये। व्रत रक्षणकी धारणा सदैव जाग्रत रहनी चाहिये। भय, आशा और विपत्तिसे रक्षा करनी चाहिये। इन्द्रियोंकी चंचल वृत्तिको वश करनेके लिये मौनव्रत सर्वोत्कृष्ट साधन है। इसलिये मौन-व्रतमें सब प्रकारकी सावधानी रखनी चाहिये। नित्य मौनव्रतसे सर्व प्रकारका सुख और केवल-ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार मौनव्रतकी यह विधि सुनकर तुंगभद्रा बड़ी प्रसन्न हुई और अत्यन्त हर्षके साथ भक्ति भाव पूर्वक मुनिमहाराजसे यह व्रत धारण किया। फिर उसने मुनि महाराजका अनेक प्रकारसे विनय किया और प्रणाम कर अपने घर गई। उसने विशुद्ध भावोंसे दोनों प्रकारका मौनव्रत यथायोग्य पालन किया। अंत समय वह व्रत सहित शुभ भावोंसे मर कर तेरे पुत्र हुई है। अर्थात् हे हरिवाहन राजन्! वह तुंगभद्राका जीव मरकर तेरे सुकौशल नामका

पुत्र हुआ है। मनके प्रभावसे इसने स्त्रीलिङ्गका नाश कर दिया है, यह पुत्र चरमशरीरी (तद्भव मोक्षगामी) और दिव्यरूपका धारण करनेवाला है।

हे राजन! यह पुत्र अब शीघ्र ही इस ही भावसे मोक्ष जायगा। इसलिये पूर्वभवके संस्कारसे इसकी विषयोंमें इच्छा नहीं है। किन्तु यह जिन सिद्धान्तका पारगामी महान् विद्वान् आठ कर्मोंका नाश करनेवाला मुक्ति स्त्रीका कन्त है। इस प्रकार मुनिराजसे अपने पुत्रका अवतार सुनकर राजा हरिवाहन संसारसे अत्यन्त विरक्त होगया। वैराग्य मुद्रायुक्त अपने घरपर जाकर उसने शीघ्र ही मुनिसागर मन्त्रीके स्वाधीन अपने पुत्र सुकौशल महाराजको राजमुकुट धारण कराकर अनेक राजाओंके साथ पिहिताश्रव मुनिराजके पास दैगंबरी दीक्षा धारण की और घोरतम तप करने लगे।

सुकौशल महाराज उत्तम नीतिके साथ राज्य

करने लगे। परंतु महाराजका मन भोगोपभोग और राज्य सुखसे अत्यंत विरक्त था। मंत्रीकी प्रेरणासे वह राज्यकार्य संभालते थे। एक दिवस मंत्रीने एकान्तमें अपने श्रुतसागर नामक पुत्र से कहा कि "महाराज सुकौशल बालक है, वे मेरी बुद्धि से राज्यकार्य कर रहे हैं, वे राज्य नीतिको नहीं जानते हैं, और न राजलोकोंकी गंभीर नीति, धैर्य और शासनकलाको ही जानते हैं,इसलिये इनका राज्य कितने दिवसों तक चलेगा? इसलिये अपनी चतुरतासे राज्यभार तुझको दिलाऊंगा तू राज्य करना। मैं तेरा मंत्री बना रहूंगा। मेरी चतुरता से निष्कंटक और निर्भय राज्य तेरा बना रहेगा। मेरे रहते राज्यमें एक शत्रुका सद्भाव नहीं रहेगा। और अविच्छिन्न राज्यका स्वामी तू बन जायगा" अपने पिताके ऐसे राजद्रोहात्मक बचनोंको सुनकर श्रुतसागर मंत्री पुत्र हां हां करने लगा और पिताको दिलासा देता हुआ

कर, समस्त बंधुवर्गसे क्षमा कराकर अपने पिताके समीप दीक्षित हो गये। संसार और इन्द्रियोंके विषयोंकी विरक्तताके कारण इनमें समस्त प्रकारके ममत्व भाव और सर्व प्रकारके संकल्प विकल्प क्षण मात्रमें छोड़ दिये और घोर तर तप धारण करने लगे।

वह मतिसागर नामका दुष्ट मंत्री (जिसको सुकौशल महाराजने राजद्रोहके कारण देशसे निकाल दिया था) महाराज सुकौशल स्वामीके तीव्र वैर रखने लगा। अपमानसे उसका हृदय जलने लगा। वार २ वह यही विचारने लगा कि "किसी प्रकार मैं सुकौशल महाराजसे अपने अपमानका वदला लूं, उसने इसीप्रकारके रौद्र विचारोंसे यह निदान किया कि "मैं सुकौशल महाराजको अत्यन्त कष्ट पूर्वक मारूं ?" ऐसे दुष्ट निदानसे मरकर वह (मतिसागर मंत्रीका जीव) मौद्गल नामक पर्वतपर सिंह उत्पन्न हुआ। सच है जीव कुत्सित विचारोंसे

बड़े २ भयंकर दुःखोंको उठाता है।

मौद्गल पर्वत कहांपर है? यह प्रश्न पाठकोंको होता होगा। इस विषयमें ग्रंथकारने एक ऐतिहासिक वृत्त लिखा है। पाठकोंके समक्ष वह अक्षरशः लिख देना योग्य समझते हैं और वह यह है कि मौद्गल देशमें एक समय मुद्गल नामका राजा था, यह राजा महान् पराक्रमी धर्मात्मा और नीतिवान था। इसने चंन्द्रकीर्ति मुनिराजसे दिगंबर जैन धर्मको धारण किया था, राजाके साथ महासेन नामक मंत्रीने भी दिगंबर जैन धर्मको भक्ति पूर्वक धारण किया। उस समय प्रजामें दिगंबर जैन धर्मका प्रभाव हो रहा था। महाराज मुद्गलने एक मनोहर पर्वत पर श्रीजिन देवके भव्य मंदिर बनवाये और महान् उत्सवसे श्रीजिनेन्द्र देवकी प्रतिमायें प्रतिष्ठा कराकर विराजमान कीं तथा इस पर्वत-का नाम मौद्गल रखा (अर्थात् अपने नामकी स्मृतिमें मुद्गल महाराजने उस पर्वतका नाम

भी मौद्गल रखा) राजा नित्य ही विनय पूर्वक बड़ी भक्तिसे वहां पर भगवान्‌की पूजा करने जाता था जिससे उस समय वह पर्वत तीर्थ समान पूज्य हो गया था उसकी प्रख्याति सर्वत्र हो गई थी।

इस ही अवसरमें इस पर्वत पर सुकौशल मुनि, तथा उनके पिता महाराज हरिवाहन मुनि विहार करते हुए आ विराजे।

उन युगल मुनीश्वरोंने इस पर्वतकी प्राकृतिक शोभा अपूर्व देखी, इसलिये इस रम्य पर्वत पर आत्मध्यान करने का विचार किया, वे आतपन योग धारण कर अत्यंत निष्पृहताके साथ अपनी आत्माके ध्यानमें मग्न हो गये। उनकी वह ध्यान मुद्रा मेरुके समान अचल थी।

परम शांत और ध्यानस्थ उन उभय मुनीश्वरोंको देखकर उस दुष्ट सिंहको (जो कि पूर्व भवमें मतिसागर मंत्रीका जीव था, और वह मरकर इस मौद्गल पर्वत पर सिंह उत्पन्न हुआ

था) पूर्व भवका जाति स्मरण हो गया, उसने अपने अपमानका बदला लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया, और इस अवसरको ठीक समझकर वह क्रोधसे भयङ्कर दीखने लगा। उसने क्रोधसे तीव्र गर्जना की और अपनी सटाओंको हिलाता हुआ वेगके साथ उन मुनीश्वर पर आक्रमण किया।

परम शांत वे मुनीश्वर इस घोर उपसर्गको जीतनेके लिये १२ अनुप्रेक्षाओंका एकाग्र मनसे चिंतवन करने लगे। वे संसारकी विचित्र लीलाको देखकर कर्मोंके जीतनेमें तत्पर हो गये। उनने शरीरसे ममत्व भाव सर्वथा छोड़ दिया था अतएव वे परम निष्प्रह-शांत-निर्भय और परम धैर्यसे निश्चल मेरुके समान स्थिर थे। वे सब संकल्प विकल्पोंको छोड़कर अपनी आत्माके ध्यानमें निमग्न हो गये।

उस दुष्ट सिंहने अपने तीव्र दांतोंसे और तीक्ष्ण नखोंसे मुनीश्वरोंका उदर (पेट) विदा-

रणा शुरू किया। मुनीश्वरोंने अपने शुद्ध ध्यानसे क्षपक श्रेणीका आरोहण कर शीघ्र ही त्रेसठ प्रकृतियोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवगण ज्ञान कल्याणककी पूजा करनेके लिये आये और मुनीश्वरोंकी दिव्य शक्ति और अतुल धैर्यका विविध स्तोत्रों द्वारा गान किया। अष्ट द्रव्यसे पूजा की और उनके अलौकिक गुणोंका स्मरणकर बार बार नमस्कार किया। मुहूर्त्त मात्रमें ही मुनीश्वरोंने समस्त कर्मोंको नाश कर मोक्ष प्राप्त की और सदाके लिये अविचल और निराकुल अनन्त सुखमें निमग्न हो गये।

सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे भूषित, आठ कर्मोंसे रहित चरम शरीरसे किंचत् "न्यून और समस्त दुःखोंसे सर्वथा रहित वे सिद्ध अवस्था-में विराजमान हुये। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण शुद्ध जन्म जरा मरणादि समस्त व्याधियों रहित वे आत्मिक अविनाशी सुखके भोक्ता हुये। सव

प्रकारसे निर्भय-परम शांत- निराकुल और दिव्य आनन्दके भोगने वाले सिद्ध परमात्माको मेरा वार वार नमस्कार हो।

इस प्रकार विशुद्ध भावोंसे जो स्त्री पुरुष इस व्रतको पालन करता है वह सर्व प्रकारके सुखोंको भोगकर त्रिलोकपूजित होता है। वह नियमसे तीसरे भवमें मोक्षको प्राप्त करता है। विशेष क्या कहें जो मनुष्य भक्ति भावसे इस व्रतको धारण करता है वह तीन लोकमें सुन्दर सुन्दर भोगोंका स्वामी होता है। और तीर्थंकर चक्रवर्ती पदको प्राप्त होकर लोकमान्य होता है। जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती हो वे इस व्रत माहात्म्यसे दिव्य संततिको प्राप्त होती हैं। समस्त दुःखोंको क्षण मात्रमें नाश कर परम सुख आत्माको प्राप्त होती हैं।

तुङ्गभद्राने एक ही भवमें स्त्रीलिङ्गका नाश किया और राजाओंके मनोहर सुखोंका भोग किया, दूसरे ही भवमें मोक्षको प्राप्त हुई। तुङ्ग

भद्राकी अवस्था कितनी दुःख प्रद थी ? वह शीघ्र ही व्रत महात्म्यसे नाश हो गई ।

विद्या, गुण और चरित्रसे पूज्य मूल संघ सरस्वतीगच्छ बलात्कार गणमें श्रीरत्नकीर्ति गुरु सदाचारी अनेक विद्वानोंको जीतनेवाले अपूर्व विद्वान् थे। उनके शिष्य देवेन्द्रकीर्ति (देवकीर्ति) विशुद्ध चारित्रको धारण करनेवाले प्रवर विद्वान् जगत्में प्रसिद्ध थे। देवकीर्तिके प्रधान शिष्य अनेक मतवादी हाथियोंके लिये सिंह समान गुण, शील, तप और चरित्रसे भूषित, लोकमान्य शीलभूषण मुनि हुये

शील भूषण महाराजके प्रधान शिष्य श्री चन्द्र महाराजने यह पुण्यको उत्पन्न करनेवाली मौनव्रत कथा वागड़ देशमें सुमतिनाथ चैत्यालयमें बनाई ।

इति श्री आचार्य गुणचन्द्र स्वामी विरचित

मौनव्रत कथा समाप्त ।

मूल-संस्कृत।

सकलज्ञानसंपूर्णान्नत्वा श्री जिननायकान्।
मौनव्रतकथां वक्ष्ये भव्यानां हितसिद्धये ॥ १ ॥
भारतीं सद्गुरूंश्चापि प्रणमामि सुधाकरान्।
यस्य येषां प्रसादाद्धि मे सद्बुद्धिः प्रजायते ॥ २ ॥
यस्मान्मौनव्रतादत्र कलहादिर्न संभवेत् ॥
केवलज्ञानसाम्राज्यं संभवत्यत्र परत्र च ॥ ३ ॥
येन मौनव्रतेनात्र पालितेन गिरःस्फुटाम्।
प्राप्नुवन्ति नरोऽमुत्रादेयवाचो भवन्ति हि ॥ ४ ॥
मौनव्रतफलादत्र नरो नारी सुखी भवेत्।
नरोऽमुत्राऽपवर्गं च पुंस्त्वं प्राप्नोति योषितः ॥ ५ ॥
एवं विधं फलं ज्ञात्वा मौनसद्व्रतकारिणा।
स्वर्गापवर्गफलदं मौनं कुर्वन्तु धीधनाः ॥ ६ ॥
मौनव्रतेन केनेह प्राप्ता ख्यातिः शुभात्मना।
तत्सम्बन्धं प्रवक्ष्यामि जिनवाचा श्रुतं यथा ॥ ७ ॥
इह जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि।
कौशल्याख्यः शुभो देशो वर्त्तते जनताप्रियः ॥ ८ ॥
कौशाम्बी नगरी तत्र धनधान्यादिभिर्भृता।
जिनधर्मे रता यत्र नरो नार्यो वसंति हि ॥ ९ ॥
हरिवाहन नामासीत्क्षितिपः पालितप्रजः।
जिनधर्मरतो नित्यं प्रतापक्रान्तविद्विषः ॥ १० ॥
राज्ञी शशिप्रभा तस्य रूपलावण्यमण्डिता।
नाम्ना गुणेन लोकानां मोहयन्ती मनांसि च ॥ ११ ॥

तयोस्पुत्रयोजर्ज्ञे तुक् सुकौशलनामभाक् ।
ईरत्पो: प्रीतिदो वृद्धिमाप्ताऽयं द्विनियेन्दुवत् ॥ १२ ॥
लालनैः पालनैः सप्तवर्षीयोऽजनि सुन्दरः ।
कलालक्षणसंपूर्णो बन्धूनां लोचनप्रियः ॥ १३ ॥
विद्याभ्यासाय तं पुत्रं महोत्सवपुरस्सरम् ।
पिता संस्थापयामास जैनोपाध्यायसद्मनि ॥ १४ ॥
गुरोर्विनयतः स्तोककालेनशुभमापठत् ।
समग्रमार्हतं धीमान् पूर्वपुण्यविशेषतः ॥ १५ ॥
क्रमात् षोडशवार्षीयो रूपलावण्यवान् भृशम् ।
मोहयन् सुन्दरीणां स जज्ञे चेतांस्यविकृतः ॥ १६ ॥
पितृभ्यां राजपत्कन्या बह्वीस्तु परिणायितः ।
परं विद्यविनोदेन राजचिन्तां न वेत्त्यसौ ॥ १७ ॥
तदा तौ पितरौ स्वांते चिन्तयामासतुस्तराम् ।
सुदुःखिनौ कथं स्वस्थ कुलवृद्धिर्भविष्यति ॥ १८ ॥
एकदा नगरोद्याने सोमप्रभयतीश्वरः ।
महतपा समागामीदवधिज्ञानलोचनः ॥ १९ ॥
तन्माहात्म्याद्वनं शुष्कवृक्षं पल्लवसंयुतम् ।
सरांसि जलपूर्णान्यभवन्कासयुतानि वै ॥ २० ॥
तादृग्वनं समालोच्य वनपालस्तदहर्षकः ।
गृहीत्वाऽनृतुसंजातफलपुष्पानि प्राभृतम् ॥ २१ ॥
अवाप्तद्रङ्गं समापद्य दृष्ट्वा राजसभे नृपम् ।
प्रणम्य शिरसा हस्तौ योजयित्वा समुत्सुकः ॥ २२ ॥

स्वामिन् ! पुण्यैर्वितः शान्तो दान्तो मुनव्रनायकः ।
सोमप्रभाभिधः क्षान्तो वनमागत्य संस्थितः ॥ २३ ॥
तत्प्रभावाद्वनं सर्वपुष्पफलविराजितम् ।
विराजितपिकारावरंजिताखिलसत्वकम् ॥ २४ ॥
मालाकारवचः श्रुत्वा हर्षवान् क्षितिपस्तदा ।
पुष्पोपजीविने तस्मै ददौ स्वांगस्थभूषणम् ॥ २५ ॥
भेरीं दापयामास राजाऽसौ तत्पुरान्तरे ।
पुलुमारुत्य निरगाद्विवंदिषुरमुं मुनिम् ॥ २६ ॥
पौरास्तमनु संचेलु सपत्नीकाः सपुत्रकाः ।
गृहीत्वा प्रसिद्धपूजां भावशुद्ध्या शुभोत्सुकाः ॥ २७ ॥
तत्समक्षं प्रतिपद्यासौ त्रिःप्रदक्षिणया मुनिम् ।
नमश्चक्रे च पञ्चांगं द्विधा धर्माभिलाषुकः ॥ २८ ॥
मुनिना धर्मवृद्धिश्च दत्ता तस्मै महीभुजे ।
सावधानमनाभूत्वा शुश्राव वृषमुत्तमम् ॥ २९ ॥
यथावसरमालोक्य विज्ञप्तिं कृतवान्नृपः ।
मदीयस्तुरगं स्वामिन् ! राजनीतिं न वेत्ति किम् ॥ ३० ॥
सततं मत्कुटुम्बं स्याद्धिपदंभ्यः पराङ्मुखः ।
वर्तितस्ति कथं धर्मे संदेहोऽस्तीति मे हृदि ॥ ३१ ॥
नृपाशयं परिज्ञायाऽसौ प्राहवचनं मुनिः ।
शृण्वेकाग्रमना राजन् ! यथार्थं ब्रवीम्यदः ॥ ३२ ॥

नो वृत्यस्मिन् पुरं भाति नरकूटाभिधं महत् ।
तत्रास्ति राणको नाम्ना रणसिंह प्रतापवान् ॥ ३३ ॥
भार्या त्रिलोचना तस्य सदा चित्तानुगामिनी ।
दंपत्योः परमः प्रेमा वर्त्तते पुण्यकर्मणोः ॥ ३४ ॥
तत्रैव नगरे श्रीलः कुटंबी तुङ्गलाभिधः ।
चक्रे निवासं तस्याऽस्ति तुङ्गगा भामिनी सती ॥ ३५ ॥
तयोर्द्वयोरयं पुत्रः सुकौशल इति नव ।
प्राग्भवे दुहिता जाता तुङ्गभद्राभिधा शुभा ॥ ३६ ॥
पूर्वपापोदयात्तस्या बांधवो क्षयमागताः ।
विमातृकापरोच्छिष्ट रत्नादिभिरवीवृधत् ॥ ३७ ॥
कालेन साष्टवर्षीया दुष्टभारार्दिता सती ।
पयभारं वहंतीत्थं चक्रे स्वोदरपूरणम् ॥ ३८ ॥
इति निर्गमयन्ती सा कालं दुःखातुरा सदा ।
एकस्मिन् दिवसे काष्ठानयनार्थं वने गता ॥ ३९ ॥
तत्रायातो महाध्यानी बहुशिष्यैर्युतो मुनिः ।
अवधिज्ञानसम्पन्नं पिहिताश्रवनामभाक् ॥ ४० ॥
तत्रागमं परिज्ञाय नागरा जनसंयुताः ।
सस्त्रीकाः सार्वनाः सर्वे सभृंगारास्सधोरणा ॥ ४१ ॥
तौर्यत्रिकमहानादपूरिताखिलदिङ्मुखाः ।
क्रमात्तद्वनमासेदुर्धर्मश्रवणलालसाः ॥ ४२ ॥
क्षमामूर्तिमिवासीनं गुरुं श्रीपिहिताश्रवम् ।
त्रिःप्रदक्षिणया नेमू राजप्रमुखभव्यकाः ॥ ४३ ॥

इत्था मधुरया वाचा धर्मवृद्धिविवर्द्धिता ।
तस्मादाज्ञां गृहीत्वा स स्वस्थलं प्राविशत् ॥ ४४ ॥
तन्मुखार्णोजसंभूतं द्विधा धर्मरसायनम् ।
पपुरनश्वराः श्रव्याभैर्जरामरणजन्महम् ॥ ४५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तुंगभद्रायासीत्सुदुःखिनी ।
पयोभारं वहन्ती द्राक् शिरसा श्रेयसेरिता ॥ ४६ ॥
दूराज्जनसमाजं तं समालोक्य सुविस्मिता ।
हृदये चिंतयामास जनोऽयं मिलितः किमु ॥ ४७ ॥
पिंड पूर्त्तयं हीनां जनतां याचकेयकम् । [१]
वाञ्छितार्थं विच्छादि दास्यतीयं कृपापरा ॥ ४८ ॥
काष्ठभारं शिरस्थं तं विक्षेपाग्निमंडले ।
वृथावलोभचेतस्का लोभो हि दुरतिक्रमाः ॥ ४९ ॥
सा आगत्य मुनीन्द्रं तं नमामि विनयान्विता ।
मुनिना धर्मवृद्धय भिनदितांतिकमाश्रिता ॥ ५० ॥
पुनरुक्तवती स्वामिन् मयेनं किं कृतं पुरा ।
येनेदृशी बभूव हं दुर्विधा भ ग्यवर्जिता ॥ ५१ ॥
मुनिः प्राह सुने जीवो विधत्तेऽहो भवे भवे ।
मिथ्यात्ववासितोभूयस्तद्वक्तुमिह कः क्षमः ॥ ५२ ॥
ततो तुंगभद्रा सा सत्यं स्वामिन् मयार्जितम् । [१]
पापं विलीयते येन तद्व्रतं सार्धिवात्कनम् ॥ ५३ ॥
तदनुक्रोशणाधारोऽलीलपद्वचनं गुरुः ।
पुत्री मौनव्रतं धेहि स्वर्गमुक्तिकरं नृणाम् ॥ ५४ ॥

तत्कथं क्रियते स्वामिन्! कस्मिन् मासस्य को विधिः।
किं मुद्यापनमस्याग्रे किं फलं भवति हि नु ॥ ५५ ॥
मुनिरागमश्रवस्यां तां ज्ञात्वा सर्वं समादिशन् ।
पुत्रि! वक्ष्ये समाध्याय मनः शृणु शिवाप्तये ॥ ५६ ॥
पौषमासस्य सिते पक्षे तिथ्येकादशी भवेत् ।
कर्तव्यो मौनसंयुक्तः प्रोषधः परमार्थकृत् ॥ ५७ ॥
यामषोडशपर्यन्तं जिनालयमधिश्रयत् ।
पंचामृतसवं कुर्याज्जिनेन्द्राणां च तद्दिने ॥ ५८ ॥
पश्चादष्टविधामर्चां कारयेद्भावपूर्वकम् ।
गीतगानविनोदेन दिवानक्तं प्रपूरयेत् ॥ ५९ ॥
आहारादिकथां नैव कुर्वीतेह परस्परम् ।
प्रमादानां परित्यागं विदध्याद्व्रतशुद्धये ॥ ६० ॥
मौनव्रतस्य ये दोषास्तान् ब्रुवे निजशक्तितः।
मौननिरतिचारं हि फलं दत्ते शुभावहम् ॥ ६१ ॥
हस्तसंज्ञा न कर्तव्या मुखसंज्ञा तथैव च ।
हुंकारो न विधातव्यो मुखसूत्कार एव च ॥ ६२ ॥
कासं खुंकार वो हुं हुं शरीरस्य विधूननम् ॥
अक्षराणि करांगुल्य दन्तच्छेन जल्पनम् ॥ ६३ ॥
ध्याने यत्रोपर्युक्तं तस्मात्स्मरणलक्षणम् ।
खटिकाक्षरसंयोगं पात्रे पट्टे तथावनौ ॥ ६४ ॥
हसनं दृष्टिविक्षेपं पुत्रपौत्रसमागमात् ।
एतत्सर्वं समाख्यातं मौनव्रतविदूषकम् ॥ ६५ ॥

शयनं नैव कुर्वीत दिवानक्तं प्रपंचनम् ।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते सचित्तस्पर्शनं त्यजेत् ॥ ६६ ॥

इदं तु वार्षिकं मौनं कथितं सार्वकालिकम् ।
मयोच्यते सुते चातः शृणु तद्विधिमादरात् ॥ ६७ ॥
भोजने वमने स्नाने मैथुने मलमोचने ।
सामायिके जिनार्चादाविति स्यान्मौनसप्तकम् ॥ ६८ ॥

इति मौनद्वयं प्रोक्तं भव्यानां हितकृत्सदा ।
नैमित्तिकं तथा नित्यं समाचर्यं स्वशक्तितः ॥ ६९ ॥
एवं विधे विधौ पूर्णे नैमित्तिके भवेत्पुनः ।
एकादशाब्दैराचर्यमुद्यापनं मयार्थिना ॥ ७० ॥

चतुर्विंशतितीर्थेशप्रासादप्रतिमाः शुभाः ।
कारयेत्सुप्रतिष्ठाच्चतुर्द्धासंघमाह्वयेत् ॥ ७१ ॥
भोजनादिमहादानं दद्यात्तस्मै शुभावतः ।
पुनः सांवत्सरस्याद्यैर्दानैस्तमानयेद्भृशम् ॥ ७२ ॥

चतुर्विंशतिवासोभिश्चतुर्विंशफलैस्तथा ।
चतुर्विंशतिपक्वान्नैर्भृंगारकलशादिभिः ॥ ७३ ॥
शोभां विस्तार्य प्रासादे गीतनृत्यविनोदकैः ।
पंचावर्णाः भवे रम्यै स्वस्तिकैः सद्धनञ्जयैः ॥ ७४ ॥

उल्लोचैस्तालकं शालकल्लरीप्रमुखोत्सवैः ।
पुण्यस्योपचयं कुर्यान्नरः सर्वार्थसिद्धये ॥ ७५ ॥
चतुर्विंशश्चतुर्विंशजैनोपकरणानि च ।
यानि कानि प्रवर्त्तन्ते तानि देयानि भावतः ॥ ७६ ॥

यः करोति नरो नारी मौनं विधिसमायुतम् ।
लभते स स्वर्गसौख्यं हि मौनेन भवे भवे ॥ ७७ ॥
हिंसाद्यो न कर्तव्या विधातव्यं जिनार्चनम् ।
प्राणान्तेऽपि परित्याज्य न मौनं मोक्षकांक्षिभिः ॥ ७८ ॥
पंचाक्षरो महामंत्रः स्मर्तव्यो हृदयेनिशम् ।
धर्मध्यानविचारस्य मध्येव्रतविशुद्धदः ॥ ७९ ॥
पारणादिवसे पात्रं तथा संघं चतुर्विधम् ।
संतोष्याहारदानेन पारणं च क्रियात्सुधीः ॥ ८० ॥
मोदकानां तथा देयाच्छुभं वाप्योतरं शुभम् ।
सुवासिनीनां श्थलासु स हिरण्यं सवस्त्रकम् ॥८१॥
एवं नैमित्तिकं कुर्यान्मौनव्रतस्य पूजनम् ।
इति चेत्पूर्यते नैव तर्हि द्वि द्विर्मितं व्रतम् ॥ ८२ ॥
नित्यमौने तु कर्तव्यो निर्वाहस्सार्धकालिके ।
इहामुत्र सुखज्ञानदायी व्रतवतामरम् ॥ ८३ ॥
इति वाचं मुनेः श्रुत्वा तुष्टमदागृहीद्व्रतम् ।
मुनिं प्रणम्य निर्विघ्ना जगाम निजमन्दिरम् ॥ ८४ ॥
भावशुद्ध्या तया ऽकारि द्विमौनव्रतमुत्तमम् ।
निमित्तिकं तथा नित्यं मामृत्यवधिनिश्चितम् ॥ ८५ ॥
व्रतानुभावतो मृत्वा साजनि नव पुत्रकः ।
चरमांगी नारीलिङ्गं निन्द्यं छित्वा सुरूपवान् ॥८६॥
तद्भवे मुक्तिगंतारं यस्मात्स्वपदि वर्तते ।
सुकोशलाभिधः पुत्रस्तस्माद्राज्यपराङ्मुखः ॥८७॥

जिनाख्यातसुशास्त्रज्ञो विषयाशानिवृत्तधीः ।
कृधा कर्माणि सध्यानाद्वरीता मुक्तिकामिनी ॥ ८८ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा नृपोऽसौ हरिवाहनः ।
संवेगी भवनो गत्वा निजधामविरक्तधीः ॥८९॥
सप्तांगं च निजं राज्यं तुजे तस्मै समर्पयत् ।
वाहुवंधं विधायोच्चैर्मतिसागरमन्त्रिणः ॥९०॥

क्षमयित्वा स्वकान् बंधून् शीघ्रं तद्वनं ययौ ।
पिहिताश्रवमास स दीक्षां दैगंबरीं श्रितः ॥९१॥
तत्साहसं समालोक्य निर्विण्णानां भवार्णवात् ।
राज्ञां मुकुटबद्धानां प्राव्राजीच्छतमूर्जितम् ॥९२॥

इतः सुकौशलो राजा राज्यं चेक्रीयते वरम् ।
विरक्तमनसा नित्यं प्रीणात्मन्त्रिणः सदा ॥९३॥
एकदा मन्त्रिणा प्रोक्तः स्वकीयस्तनुजो महान् ।
श्रुतसागर नाम ख्यो रहस्याकार्यमन्त्रवित् ॥९४॥

पुत्रायं बालको राजा राजनीतिं न बुद्ध्यते ।
मद्बुद्धितः कियत्कालं राज्यं संपालयिष्यति ॥ ९५ ॥
ततो बीजं समाकृष्य राज्ञोऽहं लोचनद्वयम् ।
तुभ्यं प्रौढाय दास्यामि राज्यभारनिरर्गलम् ॥९६॥

अहं मन्त्री भवेऽयं ते तत्सद्बुद्धिदः सदा ।
स्वस्यैव राज्यं जायेत यथा वैरविवर्जितम् ॥९७॥
इति पितृवचः श्रुत्वा स्वामिद्रोहकरं सकः ।
शिरो विधूननं कुर्वन् राजाभ्यासं समाययौ ॥९८॥

निःशङ्काके समाहूय राजानं प्रेमशालिनः ।
चित्रं च सकलं तस्मै भद्रेच्छुस्समबूबुधत् ॥९९॥

तद्दिदं सुविचार्यैव राजा मंत्री तिरस्कृतः ।
दैवाश्चिर्णोदितं सत्यं सद्यः फलति दुःकृतम् ॥१००॥
विरक्तो नृपति तस्मै राज्यं भारं ददौ मुदा ।
सप्तांगं सहितं पश्चं च श्रुतसागर मंत्रिणे ॥१०१॥

क्षमयित्वाखिलान् बंधून् त्यक्त्वा शीघ्रं गृहाश्रमम् ।
जग्राहि पितुरभ्यासे तेन दीक्षा शुभात्मना ॥१०२॥
सोऽयं मन्त्री चकार तन्मतिसागरनामकः ।
निदानं नरकावासं दुःखदायो निरंतरम् ॥ १०३ ॥

यद्यं हंता पितानेन कौशलेन महीभुजा ।
अहं प्रमाणं तर्हभ्रे हन्म्येनं कष्टतो भ्रुवम् ॥१०४॥
इति निदानं कृत्वासौ मन्त्री मरणमासदत् ।
मौग्दल्यपर्वते सिंहः समजयद्दष्ट्रीः ॥१०५॥

अथ तौ यातौ तौ (!) तसौ तपसाढ्यौ निरेनसौ ।
विरहंतौ भुवं प्राप्तौ मौग्दल्यगिरिमुत्तमम् ॥१०६॥
को मौग्दल्यगिरिः केन स्थापित इति चेन्मनिः ।
कुत्रास्ति भुवि विख्यातः स कथ्यते मया शृणु ॥१०७॥

मुद्गल देशमाराध्य मुद्गलो नाम भूपतिः ।
तेन स्वकीय नामांकः कृतो मौग्दल्यपर्वतः ॥१०८॥
स राजा जैन भक्तो भूयन्दकीर्ति दिगम्बरात् ।
तस्य मन्त्री महासेनो जिनधर्मपरायणः ॥१०९॥

उत्तुंग तोरणचैत्यालयः कारायितः स्वयम् ।
मौग्दल्यपर्वते रम्ये राज्ञा तेन समन्त्रिणा ॥११०॥
यावत्तत्राचले तौ द्वौ मुनीन्द्रौ संयमास्थितौ ।
तपो नेपथ्यसंयुक्तौ हरिवाहनकौशलौ ॥१११॥
आतापनं महायोगं बभूतुर्ध्याननिर्भरौ ।
स्ववपुर्भोनिष्पृहौ क्षांतौ मन्दिरस्थिरमानसौ ॥११२॥
तावन्मन्त्रिचरः सिंहस्तावद्राक्षीद्यतीश्वरौ ।
सस्मार स्वजनुः पूर्वं क्रोधारुणविलोचनः ॥११३॥
सटाभारं विधूयासौ घोरघुर्घुरवाक् तदा ।
दध्रावाभ मुनी दुष्टो जन्यं कर्त्तुं समुद्यतः ॥११४॥
नखरैर्विखरै दंतैश्चपेटां मर्मभेदिकाम् ।
तीव्रदुःखं चकारासौ हर्यक्षः पूर्ववैरतः ॥११५॥
तदोपसर्गं जेतुं तौ कविवाचामगोचरम् ।
सावधानावभूतां स्वे नियोज्याकृतमन्वहम् ॥११६॥
परीषहविजेतारौ चिन्तयामासतुस्तराम् ।
अनित्याद्यानप्रेक्षास्तौ द्वादशैव शिवास्पदे ॥११७॥
शुभध्यानेन तौ वीरौ क्षपकश्रेणिमाश्रितौ ।
त्रिषष्टिप्रकृतीं हत्वा संघातिकचतुष्ककाम् ॥११८॥
केवलज्ञानसाम्राज्यं प्रापतुस्तद्जल्पतः ।
देवेन्द्रादिस्तुतौ वंद्यावर्चितावष्टद्रव्यकैः ॥११६॥
अंतकृत्केवलीत्वं तौ भंजतौ मुक्तिमापतुः ।
शेषाघातीचतुष्कस्य क्षयं कृत्वा मुहूर्त्ततः ॥१२०॥

सिद्धाष्टगुणसंपन्नौ प्राक्कायोनास्थितीतकौ ।
निर्विसाते सुखं सर्वदुःखदावानलोज्झितम् ॥१२१॥
अनन्तगुणसंपूर्णमात्मोत्थमविनश्वरम् ।
जरामरणजन्मादिव्याधिविच्युतमांजसि ॥१२२॥
नरो नारी व्रतं चेतत्कुरुते भावपूर्वकम् ।
समाप्नोति स्वाश्रयं तृतीयेभवको शिवम् ॥१२३॥
अन्यथा किञ्चिदस्तीह सुन्दरं भुवनत्रये ।
तीर्थकृच्चक्रवर्त्यादि पदं प्राप्नोति मानवः ॥१२४॥
इयं मौनकथा श्रव्या पुण्यसंदोहकारिणी ।
नाशिनी पाप्मानां पूर्वोपार्जितानां शुभात्मनाम् ॥१२५॥
श्रीमूलसंघेऽत्र विद्यातिमीह, प्रद्योतमानिन्धमतानिनेशुः ।
सारस्वतो गच्छ इहैव नंद्याच्छ्रीमद्बलात्कारगणाभियुक्तः ॥
श्रीरत्नकीर्तिरभवज्जगतां वरेण्य
श्चारित्ररत्ननिवहस्य बभार भारतम् ।
तद्दीक्षितो यतिवरः कृतिदेव कीर्तिः
चारित्ररंजितजनो विहितासु कीर्तिः॥१२७॥
तदग्रशिष्योगणिशीलभूषणः परोपाहाणांद्रविणाविशेषणः ।
मदावनवान्यमतस्य दूषणः गणाग्रणी सर्वयतोद्धभूषणः ॥
तच्छिष्यो गुणचन्द्र सूरिरभवच्चारित्र चेतोहरः ।
तेनेयं रचिता कथाव्रतवतां पुण्यांकुरोत्पादिका ॥१२८॥
श्रीमत्पञ्चमतीर्थचैत्यसदने सद्वागलेव्रंगके ।
श्रीमौनवृतसकलार्थकथकानंदत्वियं भूतले ॥१२९॥
इति श्रीगुणचन्द्राचार्यविरचिते मौनवृतकथा समाप्ता

अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ ! छप कर तय्यार है !!

(सचित्र)—

(अनुवादक—पंडित गजाधरलालजी शास्त्री, न्यायतीर्थ)
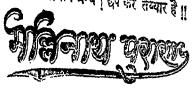
चौबीस तीर्थंकरोंमें भगवान मल्लिनाथ उन्नीसवें तीर्थंकर हैं विवाहके समय ही विभवका स्मरण हो जानेसे इन्होंने भोगोंसे सर्वथा विरक्त हो विवाह नहीं किया था। मल्लिनाथ पुराणमें बड़ी रोचकताके साथ इन्हीं भगवानके पवित्र चरित्रका वर्णन है। भगवान मल्लिनाथके पूर्वभवके जीव राजा वैश्रवणके भवसे इस पुराणमें उनके चरित्रका वर्णन किया गया है। एक वार प्रारम्भ कर देने पर फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता; इसमें मुनिराज सुगुप्तका धर्मोपदेश भगवानके समवशरणका विस्तारसे वर्णन और उनका धर्मोपदेश मनन करने लायक है। भाषा भी बहुत सरल लिखी गई है। विशेष खूबी यह है कि संस्कृत पाठ भी साथमें रक्खा गया है इसलिये ग्रन्थका विशेष महत्व बढ़ गया है। पवित्र प्रेसमें पुष्ट सफेद कागज पर बड़े मोटे टाइपमें शुद्धता पूर्वक प्रकाशित किया गया है विशेष घटनाओंके बड़े मनोहर ३ चित्र भी रक्खे हैं। जिनसे चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, सबका सार यह है, कि सुन्दरता पूर्वक ग्रन्थके प्रकाशनमें कोई भी कमी नहीं रक्खी है। न्योछावर ४) रुपया मात्र।

पुस्तक मिलनेका पता:—

सिंघई छोटेलाल परमानन्द

देवरी (सागर) C. P.

सिद्ध पदको प्राप्त हुए रामचन्द्रजी महाराज तीसरे नारायण वीर लक्ष्मण, अग्निकुण्डमें कूद कर शीलकी परिक्षामें सर्वोच्च निकलनेवाली सती सीता, विवेकी विभीषण, स्वामिभक्त सुग्रीव, चरम शरीरी हनुमान्, पति सेवा परायण अञ्जना, मोक्षको प्राप्त हुए बलभद्र और नारायणको भी पराजित करनेवाले लवण अङ्कुश आदि आदि अद्भुत पराक्रम दिखलानेवाले महा पुरुषोंका यदि आपको जीवन चरित्र जानना है, तो सबसे पहिले पद्मपुराणजीका स्वाध्याय कीजिये। लोकमें प्रसिद्ध अनेक मिथ्या वार्तोंका सत्यांश ज्ञात हो जायगा। इसके सिवाय जैन पुराण कितने निष्पक्ष भावसे लिखे गये हैं और उनमें किस सत्यतासे काम लिया गया है इसका भी निदर्शन हो जायगा और सबसे बड़ी बात यह होगी कि वनमें एकान्त वास करनेवाले निष्परिग्रही मुनिराज किस तरहका भावुक हृदय स्पर्शी, आत्माको सच्चा सुख पैदा करनेवाले चरित्रको चित्रण करते हैं यह भी ज्ञात हो जायगा।

जो लोग दूसरोंकी रामायणादि पढ़कर रावणादि मनुष्योंको राक्षस समझते हैं उन्हें अवश्य ही एक बार स्वाध्याय करनी चाहिये। खुले पत्र, १ हजार पृष्ठ मोटे अक्षर एकरङ्गा चार चित्र (पावापुर, सम्मेद शिखर, पावागढ़, सोलह स्वप्न) तथा ध्यानस्थ जैनमुनिका तिनरङ्गा चित्र देख कर आप प्रसन्न हो जायंगे। न्योछावर ११) पोष्टेज १८) पृथक।

फायदेकी बात।

हमारे यहांसे जो प्राचीन शास्त्र खोज २ कर निकाले जा रहे हैं उनका लाभ सुगमतासे लोग ले सकें, इसलिये यह नियम बनाये हैं:—

(१) जो महाशय १) प्रवेश फी जमा करा देंगे उन्हें तमाम ग्रन्थ पौनी कीमतमें मिल सकेंगे।

(२) तीर्थों, मन्दिरों और जैन वाचनालयोंको आधे मूल्यमें ग्रन्थ बराबर मिला करेंगे, पर उन्हें पहिलेके निकले हुए सब ग्रन्थ खरीदने होंगे।

(३) कार्यालयसे विशेष कर प्राचीन पुराण, मन्त्र-शास्त्र और सिद्धान्तके ग्रन्थ ही भाषा टीका सहित निकाले जायंगे।

(४) ग्रन्थोंका सम्पादन; विद्वान और अनुभवी व्यक्तियों द्वारा ही कराया जायगा।

(५) ग्रन्थ तैय्यार होनेसे १० दिन पूर्व ग्राहकोंको सूचना देकर वी० पी० की जायगी।

(६) १) रु० से कमकी वी० पी० नहीं की जायगी।

(७) २५) से अधिककी पुस्तकें मंगाते समय ५) एडवांस भेजना चाहिये।

(८) भेजनेवालेको अपना नाम, मुकाम, डाकखाना और जिला हिन्दी, गुजराती अथवा अंग्रेजीमें साफ साफ लिखना चाहिये रेलवे पार्सल के लिये स्टेशनका नाम लिखें।

सब तरहका पत्र व्यवहार करनेका पताः—

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय
१६३ लोअर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

पुस्तक मिलनेका पताः—

सिंघई छोटेलाल परमानन्द
देवरी (सागर) C. P.